Poonam Shodh Rachna(ISSN 2456-5563)
(A Multidisciplinary, Peer Reviewed and Refereed Research Journal)
Vol. 3,Issue.V, May 2024, PSR-2405031

गीतगोविन्द एवं कृष्णकर्णामृत में निहित राधाकृष्ण प्रेम एवं भक्ति दर्शन।

श्वेता कुमारी शोधार्थी
संस्कृत विभाग
मगध विश्वविद्यालय बोध गया (बिहार)

जीवात्मा संसारी है। वह देहधारी के सुख–दुःखात्मक कर्मफलों को भोक्ता है। वह तमो गुणी माया में आबद्ध है। जब कभी वह परमेश्वर की अंहेतुकी कृपा से अपने से पृथक् नित्य आनन्दस्वरूप परमात्मा का दर्शन कर लेता है तब वह तत्काल ही सर्वकन शोकरहित एवं मुक्त हो जाता है।

जुष्टं यदा पश्चत्यन्यमीश।
मस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

प्रश्न यह है कि जीवात्मका के मुक्त होने के साधन या उपासना है। मानव कल्याण के ये तीन मार्ग परम्परा प्रसिद्ध है–ज्ञान, कर्म और भक्ति।

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोन्योऽस्ति कुत्रचित्।।

ज्ञानमुक्ति का प्रमुख साधन है। ज्ञान का उद्देश्य ही है मुक्ति, जो भक्ति के बिना ब्रह्म का ध्यान करता है, उसे निर्विशेष ब्रह्मा का ज्ञान होता है। इससे साधन का ब्रह्म के साथ तादात्म्य हो जाता है। परन्तु इस अवस्था की प्राप्ति कष्ट साध्य है। जैसे ही साधक ज्ञानमार्ग की ओर बढ़ता है कि उसकी संवेदन शक्ति उसे अनेक प्रकार की भावनाओं में उलझा देती है और साधक ज्ञान से असम्पृक्त ही रह जाता है। यदि साधक किसी तरह इस भावना चक्र से त्याग पाता है कि कर्म में उलझ जाता है। फलस्वरूप साधक को भक्ति मार्ग की अपेक्षा होती है। इन दोनों मार्गों से भक्ति श्रेयस्कर है। इसीलिए तो ज्ञान एवं वैराग्य की संताने है। भक्ति सर्वसुलभ एवं सर्वजन सुलभ है। रूपगोस्वामी ने भक्ति में सम्पूर्ण मनुष्य प्राणी का अधिकार बतलाया है।

शास्त्रं हि श्रूयते भक्तौ नृमात्रस्याधिकारिता।
सर्वाधिकारितां माधस्नानस्य भुक्ता यतः।।

'भज्' सेवायाम् धतु से पाणिनि के सूत्र 'स्त्रियां क्तिन्' के अनुसार 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से भक्ति शब्द निष्पादन होता है। इस 'शक्ति' शब्द का अर्थ होता है 'तत्परतापूर्वक सेवा करना।' इस सेवा में भगवान के प्रति चरम अनुराग रहता है 'सा परानुरक्तिरीश्वरे। इसका स्वरूप है, प्रेमरूप है।

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। भागवत में भी कहा है–जिसका चित्त एकमात्र भगवान में ही लग गया है, ऐसे मनुष्य की वेदविहित कर्मों में लगी हुई तथा विषयों का ज्ञान कराने वाली दोनों प्रकार की इन्द्रियों की जो सत्यमूर्ति श्रीहरि के प्रति स्वाभिविनी प्रवृत्ति है, वह भगवान की अहैतुकी भक्ति है। अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती द्रवित हुए चिंत की भगवान में तन्मयता रूप धारावाहिका वृत्ति अथवा विकल्यवृत्ति को भक्ति कहते है। भक्ति मन का एक उल्लास विशेष है– 'भक्तिर्मनसः उल्लास विशेषः' यह विचार भक्तिमीमांसाकार का। अलंकार सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भक्ति का भाव है–

'भाव एवैयमित्येकम्'। भाव का स्वरूप है शुद्धसत्व। भागवत में कहा गया ह सत्व, रज और तन इन तीनों मायिक गुणों से निवृत्त हो जाने पर ही साधक में भक्ति की अनुवृत्ति होती है। जबकि विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते है, भक्ति के हृदय में जाग्रत होने का कोई हेतु नहीं है। यह तो अहेतुकी, परम स्वतंत्रता और स्वेच्छामयी है। साथ ही अमृत रूप और अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप है।

'अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्। गुणहित, कामनारहित, अविच्छिन्न रूप से प्रतिक्षणवर्धनशील और सूक्ष्मतर अनुभव रूप है। ''गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमान अविच्छिन्नं सूच्मतरं अनुभवरूपम्।'' यह भक्ति भगवान की ही शक्ति है अतएव आनन्छरूप है, क्योंकि भगवान की आह्लादिनी शक्ति की वृत्ति है।

भक्ति में भी मूर्धन्य और वरेण्य है 'कृष्णभक्ति'। इसका केन्द्रबिन्दु है एकनिष्ठ प्रेम, सर्वभावने सर्वात्मन्य समर्पण, अनन्य आश्रम। लौकिक वैदिक मचीदायें एकान्त, अदम्य और अजस्र प्रेम की बाढ़ में आप्लावित हो पाती है। भक्ति कृष्णविषयिणी रति है और भक्ति का स्वरूप है कृष्णरति।

भक्ति की सेवा भावना, श्रद्धा, साधु संगति, भजन, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, विश्वास, त्याग, रूचि, असाक्ति भाव इन कई चरणों में चलकर पराप्रीति की अवस्था में पहुँचती है।

आदौ श्रद्धा तत साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽमर्थिमिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रूचिस्ततः।।
अथासक्ति स्ततौ भावस्ततः प्रेमाऽव्युदञ्चति।।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः।।

नारद ने इसी पराप्रीति को परमप्रेम रूपा कहा है। (भागवत)

सा त्वस्मिन्न् परमप्रेमरूपा, अमृत स्वरूपा च।

जैसी रोगी के लिए रोग की निवृत्ति में औषण का सेवन प्रधान है और साथ ही साथ पथ्य की भी आवश्यकता रहती है, इसी प्रकार जन्म–मरण रूपी भवरोग की निवृत्ति के ईश्वर की भक्ति की परमौषध है और सद्गुण तथा सदाचार का सेवन पथ्य है। लौकिक रोग कि निवृत्ति के लिए रोगी औषध का सेवन करता हुआ। यदि पथ्य की ओर ध्यान नहीं देता है तो उसके रोग की निवृत्ति प्रायः नहीं होती, किन्तु सदाचार और सद्गुण रूपी पथ्य की कमी रहने पर भी भक्ति रूपी औषध के सेवन से भवरोग की निवृत्ति हो जाती है, क्योंकि भक्तिरूपी औषध पथ्य का कर्म भी कर लेती है। इतना ही नहीं, कुपथ्य–सेवन से उत्पन्न हुए नाना प्रकार के दुर्गुण और विध्नरूप दोषों का नाश एवं सदाचार सद्गुण का पथ्य का उत्पादन भी ईश्वर भक्ति कर देती है तथा सदा के लिए रोग की जड़ से उखाड़ देती है। अतः ईश्वरीय भक्ति परमौषध है।

रूपगोस्वामी ने कृष्ण को ही परमेश्वर मानकर 'भगवान' के स्थान पर उनका ही नामोल्लेख सर्वत्र किया है। इन्होंने उत्तम शक्ति का लक्षण बतलाते हुए लिखा है–

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्म्माधनावृत्तम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा।।

अर्थात् हर प्रकार की अन्य कामनाओं से शून्य होकर निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूपानुसन्धान आदि रूप ज्ञान और (श्रुत्यादि प्रतिपादित यज्ञादि रूप) कर्मों आदि (अर्थात् आदि शब्द के ग्राहय सांख्योग आदि के विधानों के संबंधों से) अनाच्छादित, सर्वथा अनुकूल भावना से कृष्ण का मनसा वाचा, कर्मणा अनुशीलन उत्तम भक्ति है। अपने इस मत के समर्थ में ग्रन्थकार ने नारदपंचरात्र से एक श्लोक को उद्धत किया है–

सर्वोपाधिविर्निर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरूच्यते।।

अर्थात् सभी प्रकार की उपाधियों से विनिर्मुक्त, विशुद्ध और तन्मयता से समस्त इन्द्रिय वर्ग के द्वारा कृष्ण का सेवन भक्ति कहलाता है।

इस भक्ति लक्षण में सर्वोपाधि विनिर्मुक्त और अन्याभिलाषिता शून्य पदों द्वारा जिस निष्काम भावना की ओर संकेत किया गया है, उसके उत्कर्ष की पराकाष्ठा वहाँ दिखलायी देती है, जहाँ भक्त उपासक अपनी भक्ति के फल के रूप में प्राप्त होने वाली समस्त ऋद्धि–सिद्धियों को ठुकरा देता है। न केवल ऋद्धि–सिद्धियों का अपितु एक बार प्राप्त होने पर मोझ को भी त्याग देता है। वह भक्ति के उत्कर्ष की चरम सीमा है। उच्च कोटि के साधक को जो सुख भुगवान की उपासना में मिलता है। उसके आगे मोक्ष का सुख भी उसे हेय प्रतीत होता है।

भक्ति रसामृतसिन्धुकार ने भक्ति की छः विशेषतायें बतलायी है–

क्लेशध्नीं शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्ल्लभा।
सान्दानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णकर्षणीय च सा।।

अर्थात् वह भक्ति क्लेशों का नाश करने वाली कल्याणों को देने वाली, मोक्ष की भी तुच्छ बना देने वाली, अत्यंत कठिनाई से प्राप्त होने वाली अपरिमेय आनन्द विशेष से परिपूर्ण और भगवान को आकृष्ट करने वाली होती है।

श्रीमद्भागवत में भक्तित्व का सर्वांगीण निरूपण हुआ है। उसे निर्गुणाभक्ति, विधा (सात्विक, राजस, तामस) भक्ति, चतुर्विधा भक्ति, पन्चविधाभक्ति, षड्विधा भक्ति नवधाभिक्त और कहीं चौसठ प्रकार के रूप में विभक्त किया गया है।

यदेव विद्यया करोति, श्रद्धयत्र, उपनिषदा तदेव, वीर्यवत्तरं भवति।

ज्ञान अर्थात् स्वाध्याय तप और त्याग भी भक्ति के अंग है। उपनिषदों के ऋषि इन तीनों के महत्व को मुक्तकंट से स्वीकार करते है। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है–

सत्येन लभ्यस्तपसा हि एष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यन्म्।
अन्तःशरीरं ज्योतिमयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।

उपनिषदों में अन्यत्र भी इन साधनों का आधिक्य पूर्वक वर्णन हुआ है, किन्तु ये भक्ति के अंग नहीं, ज्योतिर्मय प्रभु के दर्शन कराने वाले साधन कहा गया है। भक्तिभाव का जो विवेचन वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थों में हुआ है, उसमें इन्हीं साधनों को भक्ति का अंग माना गया है।

वेदों में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों साधन एक–दूसरे के पूरक है। उनकी समन्विति मानव–जीवन के चरम लक्ष्य को सिद्ध करने वाली है। ज्ञान हमें लक्ष्य का बोध कराता है कर्म उसे लक्ष्य तक पहुँचाता है और भक्ति उस लक्ष्य में तल्लीन कर देती है। ज्ञान, कर्म और भक्ति को प्रदीप्त करता है। भक्ति ज्ञान और कर्म का उद्रक करती है। कर्म अन्य दोनों के निष्पादन में सहायता देता है। अतः तीनों की क्रमपरक नहीं, प्रत्युत सह–समन्वित लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य मानी जाती है। गीता में भी ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का समन्वय विद्यमान है। यद्यपि भक्ति अपना स्वर दोनों से कुछ ऊँचा अवश्य किये हुए है। भागवत में ज्ञान और कर्म को भक्ति से निम्न स्थान प्राप्त है। उसके महात्म्य प्रकरण में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति की संतान कहा गया है।

भगवान न तो योग के द्वारा और न संख्य के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। उनकी प्राप्ति का सुलभ भक्ति ही है। एक निष्ठ भाव से की गयी भक्ति चाण्डाल तक को पवित्र कर देती है।

न साधयति माँ योगो न सांख्यं धर्मउद्धव।
स्वस्वाध्यायतपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोपार्जिता।।
भक्त्यऽहनेकया ग्राहयः श्रद्धयात्मा प्रियः स्ताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।

गद्गद् वाणी से द्रवित चित्त हो, कभी रोता हुआ, कभी हँसता हुआ, कभी लज्जा छोड़कर गाता हुआ और नाचता हुआ मेरी भक्ति में लीन होता है, वह इस निखिल विश्व को पवित्र कर देता है, जैसे अग्नि स्वर्ण को निर्मल कर देती है।

भागवत में भक्ति अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में आ गयी। यहाँ उसे विविध रूपों में परिभाषित किया गया तथा भक्ति के अनेक भेद किये गये। सामान्यतः भक्त के तीन प्रकार किये गये है–विधि के अनुगामी, निषेधपरक और साधारण। साधारण भक्त दैनिक आचार के रूप में केवल प्रथानिर्वाह के लिए भक्ति करते है, जिसे एक औपचारिकता पूरी करना कहा जा सकता है। विधि के अनुगामी भक्त शास्त्रीय विधि–विधानों के अनुकूल अपने इष्ट देव का अर्चन, पूजन ध्यान आदि करते हैं। निषेध–परक भक्ति में दुःसंग अर्थात् भक्ति विद्वेषी, ज्ञान भक्ति के प्रतिकूल आचार तथा काम, क्रोध, मोह आदि का त्याग अपेक्षित है। गीता में चार प्रकार के भक्त बतलाये गये है–आर्त्त, अर्थार्यी, जिज्ञासु और ज्ञानी। इन चारों में ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ कहा गया है। सनक, सनदिन, सनत्कुमार और नारद ऐसे ही ज्ञानी भक्त थे।

भागवत में प्रतिष्ठित भक्ति की यह धारा सुदूर तक प्रवाहित होती रही। हिन्दी साहित्य में तो एक काल–खण्ड भक्ति साहित्य के नाम से ख्यात हो गया। इसमें सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, रसखान, नानक, दादू अनेक संतों का नामोल्लेख है। इस प्रकार भक्ति विकास की अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। वह आज भी जन–मानस में अपना स्थान जमायी हुई है।

संस्कृत वाङ्मय में स्वतंत्र एवं पूर्ण रूप से भक्ति परम्परा का आविर्भाव भागवत पुराण से होता है। इसमें कृष्ण पूर्ण भगवान है, इनकी बाल–लीलायें चमत्कार पूर्ण है। इनकी छोटी काया में विस्तृत ब्रह्माण्ड का दर्शन होता है। भागवत में महाभारत से लेकर पुराणकाल तक कृष्णचरित में समाविष्ट सभी तत्वों का समन्वित रूप उपलब्ध होता है। यहाँ श्रीकृष्ण पूर्ण भगवान के रूप में मान लिये गये हैं।

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयंम् ।

गोपाल कृष्ण विषयक सर्वाधिक कथायें हरिवंश पुराण में है। इस पुराण में कृष्णचरित को गोपियों के साथ जोड़ दिया गया है। विष्णुपर्व के 128 कृष्ण जीवन की सम्पूर्ण कथा दी गयी है। यहाँ उनके सौन्दर्य का वर्णन है। पूतनावध, शकटासुर वध, यमलार्जुनपतन, माखन चोरी, गोवर्धनधारण आदि लीलायें यहाँ विस्तारपूर्वक दी गयी है। ये समस्त वर्णन भक्ति भाव से सरावोर है।

भागवत की इस भक्ति धारा का विकास आगे चलकर कई रूपों में हुआ। संस्कृत गीतिकाव्य में साहित्यिक तत्वों का प्रधान्य है। गीति साहित्य में भक्ति भावना का आरम्भ जयदेव से ही होता है। इन्होंने कृष्ण की भगवत स्थापित करने के लिए दशवतार का सर्वप्रथम वर्णन किया है। एक ही पूर्ण ईश्वर अनेक रूपों में अवतरित हुए है। मतस्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, परशुराम आदि की तरह श्रीकृष्ण भी विष्णु के अवतार है। इन्होंने राधा–कृष्ण को जिस प्रणय लीला का वर्णन किया है वह श्रृंगारिक होता हुआ भी भक्तिभावना से ओत–प्रेत है। प्रत्येक गीति के अंत में महिमा गान है। वह महिमागान भक्त हृदय का सान्द्रभाव है। उन पद्यों में कवि पूर्णतः समर्पण भाव प्रस्तुत करता है। इसमें चाहे तो उन्होंने (कवि ने) कृष्ण की जय–जयकार किया है, भक्तों एवं सहृदयों से भगवत् लीला का अवगाहन करने का नम्र निवेदन किया है।

गीतगोविन्द में अपने उपास्य के प्रतिपूर्ण समर्पण या शरणागत का भाव देखकर परवर्ती गीति–काव्यकारों ने अपने–अपने आराध्य की महिमा गयी है। आगे चलकर यह गीतगोविन्द स्त्रोत साहित्य का उपजमीवन सा बन गया। गीतिकाव्य में जो साहित्यिक रसमयता थी वह भी स्त्रोतों में विशुद्ध भक्ति में परिणाम हो गयी। वे सभी स्त्रोत भक्तों के लिए प्रभु श्री स्तुति के साधन बने एवं अन्तःकरण के भक्तिभावों की अभिव्यक्त के माध्यम हुए। चौदवहीं सदी में जगद्धर ने स्तुतिकुसुमांजलि की रचना की। इसमें भगवान शंकर की महिमा की गान अत्यंत सरस पदावलियों में किया है। इसके 38 स्त्रोत है। इसमें भक्तहृदय की अन्तर्भावनाओं का अतिमधुर पदावली में चित्रण किया गया है। इसमें गीतगोविन्द की तरह ही भक्तिभावना के साथ–साथ कवित्व की पराकष्ठा है। इसके अधिकांश पद्यों में भक्तहृदय की इतनी करूणा है कि पाठक आत्मविभोर हो उठता है। इसी प्रकार अनेक स्त्रोत काव्यों पर जयदेव का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। यह स्थूल समय नहीं भी दिखलायी दे, लेकिन उनकी प्रेरणाभूमि में गीतगोविन्द अवश्य है। ईश–भक्ति के साथ ही गीतगोविन्द का आरम्भ हुआ है।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदिमुदारम्
श्रृणु सुशदं शुभदं अवसारम्।
केशवधृत दशविध रूप
जय जगदीश हरे।।

इस पद्य में कवि कह रहा है कि दशावतार स्तुति इनकी औदार्यपूर्ण अभिव्यक्ति है। भगवच्चरित सुनने वाले को आत्यन्तिक सुख प्राप्त होगा या सद्य परिर्निवृति हो। यह शुभकारक या मंगल विद्यायक भी है। इसमें परमात्मा के चरित का वर्णन है जो संसार कार सारतत्त्व है। यह संसार–सागर को पार करने के लिए सुन्दर तरणी है।

यहाँ उपास्य भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कवि का रति भाव है। स्थायी भाव है। लालम्बन श्रीकृष्ण है तथा उद्दीपन भक्तों का समागम है, लीलागान, प्रसन्नता, आह्लक अनुभव है तथा मति, वितं आदि व्यभियारी होने से यहाँ भक्तिरस है। गीतगोविन्द के गीतों में नवधा भक्ति के तथ्य स्पष्टतः उपलब्ध है–

श्रीकृष्ण के मुखाविन्द से निःसृत वाणी को सुनना, उनकी वेणु की मधुर ध्वनि को सुनना यह भक्ति का रूप है। इसे सुनकर भक्त परम आनन्द की प्राप्ति करता है। अतएव कवि ने सभी श्रद्धालुओं को श्रीकृष्ण के लालीकृत सुनने के लिए आग्रह किया है–

श्रृणु रमणीयतरं तरूजीनमोहनमधुरिपुरावम्।
कुसुम शरासनशा सनबन्दिनि पिकनिकरे भज पावम्।।
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके।।

यहाँ श्रवणभक्ति का विन्यास हुआ है।

जयदेव कवि ने गीतों के माध्यम से भगवान का जो गुणानुवाद किया है उसे सुनना भी श्रवण भक्ति ही है।

श्रीजयदेवभणितमधरी कृतहारमुदातिसवामभ्।
हरिविनिहित तमनसामधिष्ठितु कण्डतटीमविरामभ्।।
मुग्धे मधुमथन मनुगतमनुसर राधिके।।

भगवान को लीलाओं का स्मरण करना, बार–बार उस छवि एवं लीलाओं को चर्वण करना–ये यह स्मरण भक्ति है–

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम्।
चलित दृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोविलोलवतंसम्।।

अर्थात् श्रीकृष्ण की मनोमोहिनी छवि राधा की आँखों में तथा हृदय में बसी है। अधरामृत के सन्चार से मुधर ध्वनि से अलंकृत वंशी को जिस समय वे बजाते है और तिरछी आँखों से देखने वाले चंचल तथा किरीट को धारण किये हुए जिस समय के मधुर परिहास करने लगते है उस समय की उनकी छवि मुझे राधा को बार–बार याद आती है।

सम्पूर्ण पंचम् अष्टपदों में स्मरण भक्ति का भाव ही भरा हुआ है।

भक्त अपने उपास्य को प्रसन्न करने के लिए भजन–कीर्तन करता है, उनके नाम का कीर्तन करता है। राधा हमेशा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का नाम संकीर्तन करते है, वह भी संस्कर गीत के रूप में गाकर–

चलमलयपवनसुरते।
विलस रसलविललितगीते।
प्रविश राधे! माधवसभपमिह।।

यहाँ मध्य के सम्बोधन पद से कीर्तन का भाव व्यंजित होता है।

पादसेवन भक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप है। स्वयं श्रीकृष्ण कहते है–

करकमलेन करोमि चरणमहभागमितासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरू शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगति शूरम्।।
क्षणमधुना नारायणमनुगतनुसर मां राधिके।।

यहाँ श्रृंगारिक वर्णन है तभी श्रीकृष्ण राधा का अनुरंजन करना चाहते है। राधा और कृष्ण को अभिन्न मानकर यहाँ पादसेवन भक्ति का अनुभव किया जा सकता है।

भक्त बहुत अनुनय–विनय करके उपास्य के चरणों पर बार–बार गिरकर उन्हें मानता है, प्रसन्न करता है। यही भाव अधोलिखित पद्य में है–

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्राणिपातम्।
सम्प्रति मञ्जुल वञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम्।
मुग्धे मधुमथनमनुगत मनुसर राधिके।।

यहाँ श्रीकृष्ण प्रणिपात कर रहे हैं।

पाद्य, अर्ध्यादि उपचारों से भगवान् की पूजा अर्चना ही अर्चन भक्ति है। गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण की अर्चना का स्पष्ट वर्णन है–

जयश्रीविन्यस्तैहित इव मन्दरमकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्वपरणमुदा मुद्रित इव।
भुजापीडक्रीड़ा हतकुवलमापीडकरिणः
प्रकीर्णासृविगन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः।।

अर्थात् प्रचण्ड भुजदण्ड की क्रीड़ा से कंस के कुवलायी नामक हाथी को मारने वाले, श्रीकृष्ण के, रक्त के बिन्दुओं में व्याप्त की मानो विजयलक्ष्मी ने प्रसन्न होकर पारिजात के फूलों से स्वयं पूजा की हो और कुवलयापीड के संग्राम से हर्षित होकर स्वयं श्रीकृष्ण सिन्दूर से उसको रंजित किये हो ऐसा कृष्ण का भुजदंड आपका कल्याण करें।

साक्षात् विजयलक्ष्मी के द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा–अर्चना का वर्णन होने से यह अर्चन भक्ति का उदाहरण है।

इष्टदेव की स्तुति–वन्दना करना है वन्दन भक्ति है। भक्त उपाय के समक्ष प्रणत होकर उससे मनोवांछित प्राप्ति की प्रार्थना करता है अथवा उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति करता है। एक पद्य में अपनी प्राणरक्षा के लिए राधा से प्रार्थना करते हैं, बड़े ही आर्त्त भाव से विनती करते है–

अधरसुधारसमुपनय भाभिनि! जीवनमृतमिवदासम्य।
त्वयिविनिहित मनसंविराहानलदग्धवपुष्ज्ञ विलासम्।।

यद्यपि यहाँ कामातुर कृष्ण राधा के प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना कर रहे है। प्रत्यक्षतः तो श्रृंगार है, किन्तु वन्दनभक्ति की अन्तः प्रवाहित है।

सम्पूर्ण गीतगोविन्द में तो भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गोपिकाओं का सख्यभाव ही है। इसी रूप में वे श्रीकृष्ण को अनुरंजित करती है।

भगवान श्रीकृष्ण तो राधा के कृत दास है–

त्वां चिन्तेन चिरं वाहान्याय मतिश्रान्तो तापितः।
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाध बिम्बाधरम्।
अस्याङ्ग तदलङक क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्यास्तव।
क्रीतदास इवोप से विपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः।।

राधा के प्रेमाभक्ति से खरीदे हुए दास है श्रीकृष्ण राधारानी के।

इधर श्रीकृष्ण राधा की सेवा कर रहे है। उनके पैर दबा रहे है, शान्ति–अपनयन कर रहे है–

कमकलेन करोमि चरण महमागमितासि विदुरम्।
क्षणमुपकुरू शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगति शूरम्।।

इस सम्पूर्ण गीत में श्रीकृष्ण अपनी कामपीड़ा दूर करने के लिए राधा से निवेदन करते है। यह निवेदन अत्यंत आर्त्ततापूर्ण एवं विनम्र शब्दों में है। आत्मनिवेदन की अवस्था में भक्त की यही मनोदशा होती है।

इस प्रकार गीतगोविन्द में नवधा भक्ति के सभी प्रकार विद्यमान है। सम्पूर्ण काव्यव भक्ति भावना से ओत–प्रोत है।

श्रीकृष्ण कर्णामृत संस्कृत–गीतिकाव्य–परम्परा की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला है।

गीतगोविन्द के माध्यम से गीति–साहित्य में भक्ति की जो अमल, शीतल धारा प्रवाहित हुई वह सुदीर्घ काल तक प्रवाहित ही नहीं विकसित भी होती रही। काव्य से प्रतीत होता है कि लीलाशुक एक सिद्धहस्त कवि ही नहीं, प्रत्युत् उच्च कोटि के भक्त भी है। इनकी भक्तिभावना सम्पूर्ण काव्य में आद्योपान्त व्याप्त है।

लीलाशुक के उपास्य है भगवान श्रीकृष्ण। इन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की रूप–छवि और लीला का जो भावमय वर्णन प्रस्तुत किया है, उसी से इनकी भक्ति भावना की स्तरीयता का पता चल जाता है। काव्य के आरम्भ में तो ही स्थूल रूप से आराध्य के रूप एवं कान्ति का वर्णन करते हैं, फिर धीरे–धीरे उनके अन्तः में प्रवेश करते है। वहाँ उनके अन्तः भगवान के विराट स्वरूप का दर्शन करते है, भावना करते। फिर वे उनको करूणा, दया, ममता आदि दैवी गुणों का निरूपण करते है। वैसे ही धीरे–धीरे बढ़ते हुए उनके मानों उनके पास पहुँचने का प्रयास करते है। वे प्रभु के समीप ज्यों–ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों–त्यों इनकी तन्मयता बढ़ती जाती है। फिर एक ऐसी अवस्था जाती है कि साधक ऐक्य का अनुभव करने लगता है।

लीलाशुक अपनी भक्ति के प्रतिफल के रूप में कवि न तो स्वर्ग चाहते है और न मोक्ष। ये तो अनवरत प्रभु के चरण–सरोज की सेवा करना चाहते है–

न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोज हंसकुलसंगविसृष्ट गृहाः।।

भाषा कवि संत तुलसी भी कहते हैं कि सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले भक्त कभी मोक्ष नहीं चाहते–

सगुनोपासक मोक्ष न ले हीं।
ताकर राम भगति निज देहीं।। (रामचरितमानस)

भगवान श्रीकृष्ण के मुखमण्डल की कान्ति रूपी माधुर्य का एक कण भी लीलाशुक को मिल जाये तो ये अपने जीवन को धन्य समझेंगे–

कमनीयकिशोरमुग्धमूर्तेः
कलवेणुक्वणितादृता पितादृता ननेन्दोः।
मम वाचि विजृम्भतां मुरारे
र्मधुरिम्णः कणिकाऽपि कापि कापि।।

अर्थात् अत्यंत कमनीय किशोर भगवान श्रीकृष्ण की आकर्षक छवि की, वंशी की मधुर ध्वनि के द्वारा समादृत मुखचन्द्रवाले मुरारि के मुखमंडल के माधुर्य की कोई एक सूक्ष्मतम कणिका मेरी वाणी में प्रकाशित हो। इसी तरह का भाव काव्य के सभी पद्यों में भरा हुआ है। भक्त लीलाशुक चाहते हैं कि भगवान के श्रीविग्रह की कान्ति का एक अंश भी उन्हें प्राप्त हो, उनके अन्तः के गुणों की प्राप्ति भी इन्हें हो। उपास्य देव की हर मुद्रा, हर भावभंगिमा कवि को प्रिय है। उसका भी दर्शन अनुभव एवं भावना करके कवि आनन्दित होना चाहता है।

कवि के भक्त हृदय की व्याकुलता भी कुछ विचित्र सी है। भक्त बार–बार कहता है कि हे कृपासिन्यधो! आपके प्रफुल्लित मुखमण्डल की कांति से युक्त मधुर कुरली की ध्वनि कब मेरे कानों में पड़ेगी और मेरी समाधि भंग करेगी। मैं तो उस क्षण की प्रतीक्षा में हूँ। भगवान आप सबके सर्वदुःखतिशय के निवारण कमें समर्थ है। मेरी उत्कण्ठा के आप अच्छी तरह जानते है। आप मेरे दुःखों का निवरण करें। आप केवल अपने मुखारबिन्द को मेरे तृषित नेत्रों के समक्ष कर दें। उससे ही मेरी उत्कण्ठा शान्त हो जायेगी, नेत्र तृप्त हो जायेंगे, अन्तःकाल आनन्द से भर जायेगा।

हे देव हे दयित है भुवनेकबन्धो
हे कृष्ण हे चापल हे करूणैक सिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हो हो कदा नुभवितासि पदं दृशोर्मे।।

यहाँ लालाशुक की पादसेवन भक्ति व्यक्त हुई है। वे तो भगवान के पदकमल का दर्शन चाहते है। उसी के लिए इनका मन आकुल–व्याकुल है।

इस पद्य में भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त प्रत्येक विशेषण भक्त की उत्कण्ठा को व्यक्त कर रहा है। ऐसा लगता है कि भक्त ध्यानमण्डल होकर अपनी बाहें उसे उठाकर अश्रुपूरित नेत्रों वाला, वाष्पित कण्ठों से, भगवान का विविध नामों से सम्बोधित कर रहा है और याचना कर रहा है कि आप–अपने चरण–कमल का दर्शन करावें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लीलाशुक परम कृष्ण भक्त है। उनका अभीष्ट है उपास्य का सान्निध्य प्राप्त करना और भरपूर, जीभर निहारना। इनके काव्य में प्रत्येक पद्य में कवि की तरल भक्ति भावना भरी हुई है।

गीतगोविन्द के एक पद्य में भी ऐसी ही उत्कण्ठा तथा भगवान की इस कमनीय मूर्ति का वर्णन हुआ है–

रासोल्लाभ विभ्रममृतामाभीरवाम भ्रवा मम्यर्ण
परिरभ्य निर्भरभुरः प्रेमान्धया राधया।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति।
र्व्याजादुद्भऽचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातुवः।।

यहाँ जगमंगल की कामना की गयी है। भगवान श्रीकृष्ण का अमृतपूर्ण, श्रीराधा द्वारा चुम्बित, मुस्कायमान होने से अतीव सुन्दर मुखमण्डल तुम्हारी (जगत की) रक्षा करें।

भक्त की उत्कण्ठा बढ़ती जा रही है। उसे भगवान का हर क्षण नूतन रूप दिखलायी दे रहा है। वह उनके मधुर रूप की एक झलक चाह रहा है। वह अत्यंत आतुर है कि भगवान् की कृपा कब होगी, कब वह क्षण आयेगा, जब वे अपना दर्शन देंगे।

अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का परित्याग होने लगता है। अपने हृदय की निष्कलुषता और प्रभु की अनुकूलता सम्पादन करने का यही सर्वोत्तम मार्ग है। दास्य भक्ति इसी हेतु भक्ति की भूमिा में सर्वप्रथम स्थान पाती है।

पिता–पुत्र या माता–पुत्र भाव और सखा भाव भी भक्ति का एक प्रकार है। प्रभु में पितृभावना से बढ़कर मातृभावना का महत्व का महत्व है। पुत्र पिता से प्रेम तो करता है, डरता भी है। अतः पितृभावना प्रभु और भक्त के बीच में कुछ अन्तर रखती है। यह अन्तर मातृभावना से दूर होता है। माता प्रेम की मूर्ति है, ममत्व की साक्षात् प्रतिमा है। उससे भय नहीं होता। पुत्र उसके समीप निःशंक भाव से चला जाता है। वैदिक भक्ति यह मातृत्व भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। मातृभावना का अपर रूप वात्सल्य भाव है। पुत्र माँ से प्रेम करें या न करें, पर माता तो पुत्र से प्रेम करेगी ही। वात्सल्य भावना का क्षेत्र व्यापक है। मानव–क्षेत्र को पार कर यह पशु–पक्षियों तक में पायी जाती है।

ईश्वर साक्षी, चेता और निर्गुण है। जीव भी उसका समान धर्मा सखा बनकर इसी रूप को प्राप्त कर लेता है। इस भाव में न दास का दूरत्व है, न पुत्र का संकोच है और पत्नी का अधीनभाव है। ईश्वर का सखा जीव स्वाधीन है, समस्त मर्यादाओं से ऊपर और अनादि काल से उस वरेण्य वरूण का बन्धु है, पवमान प्रभु का प्यार साथी है।

****